eISSN 2581-8996

[Date]

THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

सांस्कृतिक धरोहर– कुमाऊँ के कौथिक 'मेले'

1डॉ0 ज्योति साह

1एसोसियेट प्रोफेसर इतिहास, दीन दयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीतापुर

Received: 13 July 2020, Accepted: 27 July 2020, Published on line: 30 Sep 2020

Abstract

कुमाऊँनी जनजीवन में मेंलों का अधिकता और संस्कृति पर उसके प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में कुमाऊँनी संस्कृति के विभिन्न पक्षों का उल्लेख करते हुए सांस्कृतिक धरोहर के रूप में यहां के मेंलों के विषय में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मेलों के स्वरूप और विशेषताओं के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। मध्यकाल से परम्परागत रूप निरन्तर लगाये जा रहे दो मेलों स्याल्दे बिखौती और देवीधुरा बग्वाल मेला का विस्तृत वर्णन और समाज पर उनके प्रभाव को भी प्रस्तुत किया गया।

मुख्य शब्द–कुमाऊँनीसंस्कृति, कौथिक, मेले, बग्वाल, स्याल्दे बिखौती, लोक जीवन।

भूमिका

संस्कृति जीवन को श्रेष्ठ व सम्यक बनाने की कला का नाम है। सांस्कृतिक विकासवाद के विशेषज्ञ **एडवर्ड बर्नट टायलर** के अनुसार ''संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, कानून, प्रथा एवं अन्य कई आदतों और क्षमताओं का समावेश होता है। व्यक्ति अपने विशिष्ट सांस्कृतिक मूल्यों के साथ नये प्रयोग, उपकरण, माध्यम, व्यवहार, चिंतन और आदतों व विचारधाराओं को ग्रहण करता रहा है, जो समग्रता में उसकी संस्कृति कहलाती है। संस्कृति निरन्तर गतिमान रहती है। **डा0गोविन्द चातक**– संस्कृति परिष्कार करती है किन्तु उसमें व्यक्ति और समाज को निखारने की शक्ति तब आती है जब वह जड़ या स्थिर न रहे और गति के स्पन्दन से युक्त रहा है।[1] युवाल नोआ हरारी की 'सेपियन्स' संस्कृति किस तरह बदल रही है, उसकी गतिशीलता को समझा जा सकता है।[2]

कुमाऊँनी संस्कृति में लोक जीवन विषयक तत्वों की प्रधानता है। यहां लोक संस्कृति के विभिन्न रूप जागर, लोकगीत, लोकगाथाओं, लोकनृत्यों आदि में अभिव्यक्त होते हैं, वहीं अभिजात्य संस्कृति ऐपण, बारबूंद और शिल्प वास्तुकला की गम्भीरता में व्यक्त होती है। उत्सव, मेले, त्यौहार, विविध धार्मिक अनुष्ठान आदि समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़कर संस्कृति को दृढ़ता प्रदान करते हैं। विशेषकर मेले या कौथिक वह माध्यम हैं, जो विभिन्न संस्कृतियों को जोड़कर एक साझा सांस्कृतिक विरासत प्रस्तुत करते हैं।

कुमाऊँनी समाज विभिन्न संस्कृतियों और समाजों का मिश्रण है और मेले विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल है। कुमाऊँ क्षेत्र में बड़े और छोटे मेलों को मिलाकर लगभग चालीस – पचास मेले वर्ष पर्यन्त विभिन्न तिथियों में लगते हैं।[3] प्रत्येक मेले के साथ अनेक लोक कथाएं प्रचलित हैं। सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर होने वाले कौथिक/मेले अपने वृहद स्वरूप में यहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक पहलुओं से सम्बन्धित रहें हैं। अधिकांश मेले किसी देवालय से सम्बन्ध रखते हैं और संक्रान्ति या पूर्णिमा के दिन प्रारम्भ होते हैं। स्थानीय धार्मिक विश्वासों से जुड़े होने के बाबजूद इन मेलों को उनके स्वरूप और विशेषताओं के आधार पर तीन स्पष्ट वर्गों में बांटा जा सकता है।

मेलों का वर्गीकरण–

- **धार्मिक मेले**

1. **नंदा देवी, अल्मोड़ा**–नंदा कुमाऊँ और गढ़वाल की प्रमुख देवी है। अनेक स्थानों पर नंदा देवी का मेला लगता है। अल्मोड़ा में 1638 से 78 तक शासक रहे बाजबहादुर चंद नेदेवी नंदा की प्रतिमा की स्थापना अल्मोड़ा में की। उसके बाद से ही अल्मोड़ा में नंदा देवी मेला प्रतिवर्ष भाद्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी को लगता है। इसके अतिरिक्त कोट की माई और 1918–19 नैनीताल में नंदा देवी का मेला लगता है।
2. **चैती मेला, काशीपुर**–चंद वंश के शासन काल से अब तक इस मेले का चैत के माह में तराई के प्रमुख नगर काशीपुर में आयोजित होता है। यह दस दिन चलने वाला यह मेला देवी बालसुन्दरी की पूजार्चना हेतु लगाया जाता है। बालासुन्दरी

देवी चंद राजाओं की कुलदेवी थी। स्थानीय थारू जनजाति के लोग भी इस देवी के विशेष भक्त होते थे और मेले में विशेष श्रद्धा और उत्साह से आते थे।।

3. **श्री पूर्णागिरी मेला, टनकपुर**—टनकपुर में पूर्णागिरी में चैत्र और अश्विन की नवरात्रियों में मेले का आयोजन होता है। यह मन्दिर को 108 सिद्धपीठ में गिना जाता है।
4. **श्रावणी मेला, जागेश्वर**—अल्मोड़ा के समीप जागेश्वर शिव भक्तों की प्रमुख तीर्थ स्थली है। यहां प्राचीन काल से ही प्रति वर्ष सावन में एक माह तक श्रावणी मेले का आयोजन किया जाता है। शिव की पार्थिव पूजा की जाती है। यहां महिलाएं दीप जलाकर संतान प्राप्ति हेतु पूजा अर्चना करती हैं।
5. **कालसन का मेला,टनकपुर**—टनकपुर में पूर्णिमाको लगता है। प्रेत बाधाओं से पीड़ित व्यक्तिों का ईलाज करने के लिए लाया जाता है। यहां धनुष और त्रिशूल, घंटिया देवता को अपर्ण की जाती हैं।

- **व्यापारिक महत्व के मेले**
  1. **माघी उत्तरायणी मेला, बागेश्वर**—चंद शासकों— बागनाथ मन्दिर के समीप, विशाल मेला, सरयू नदी में स्नान का महत्व है, परन्तु व्यापारिक महत्व अधिक है—तिब्बत, नेपाल, काली कुमाऊँ, गढ़वाल आदि स्थानों से व्यापारी इस मेले में आते रहे हैं।
  2. **सल्टिया सोमवारी मेला, रानीखेत**—वैशाख माह में अन्तिम रविवार को रानीखेत के समीप मासी में इस मेले का आयोजन किया जाता है। पहले यहां पशुओं का व्यापार होता था।
  3. **थल मेला**—पिथैरागढ़ जिले में 13 अप्रैल 1940 से प्रारम्भ इस मेले का आयोजन व्यापार के दृष्टिकोण से किया गया। यह बालेश्वर मंदिर में दस से पन्द्रह दिन तक आयोजित किया जाता है।

eISSN 2581-8996

[Date]

THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)

A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL

Vol. 3, Issue 02, July 2020

4. **जौलजीवी मेला**–यह पिथैरागढ़ जनपद में 14 नवम्बर 1914 को धार्मिक दृष्टिकोण से प्रारम्भ हुआ किन्तु नेपाल सीमा पर होने के कारण इसका व्यवसायिक महत्व है।[4]

- **सामंती संघर्ष के प्रतीक मेले'बग्वाल'**–

1.स्याल्दे बिखौती, द्वाराहाट–कत्यूर कालीन – प्रतिवर्ष चैत के अन्तिम दिन और वैशाख के प्रथम दिन इस मेले का आयोजन किया जाता है।

2.बग्वाल, देवीधुरा–कत्यूर काल में आठवीं नवीं सदी से इस बग्वाल मेले का प्राचीन नगरी लोहाघाट के पास देवीधुरा में आयोजन किया जाता है।

बग्वाल मेला, देवीधुरा–

देवीधुरा के वाराही देवी मंदिर में प्रतिवर्ष श्रावण मास की पूर्णिमा को रक्षाबन्धन के दिन बग्वाल मेला लगता है। सावन में लगने पर भी इसे आषढ़ी कौतिक कहा जाता है। यह कत्यूर शासकों के समय से लगाया जाता हैं। राजा रतन चन्द्र, कीर्ति चन्द्र के समय की जुमला बोहराणी और भागा धौनानी आदि लोकगाथाओं में भी आसाढ़ी कौतिक का वर्णन मिलता है।[5] इस मेले का प्रारम्भ शुक्ल एकादशी को देवी के सांगी पूजन से होता है। पूर्णिमा को दो दलों में एक दूसरे पर पत्थरों का प्रहार कर बग्वाल होती है। विद्वानों में बग्वाल के विषय में मतभेद है। अधिकांश इसे शान्तिकाल में किया जाने वाला युद्धाभ्यास मानते है।[6] लेकिन पुरातत्ववेत्ता डा0 रामसिंह का मानना है कि इसके माध्यम से देवी को मानव रक्त अर्पण किया जाता था, जो प्राचीन काल में दी जाने वाली नरबलि का अवशेष रूप है। चंद काल में महर और फर्त्याल जातियों द्वारा नरबलि दी जाती थी।[7]

देवीधुरा के दस बारह किमी की परिधि में रहने वाले क्षत्रिय परिवार चार धड़ों या खामों के रूप में बस बग्वाल में भाग लेते है। बग्वाल में भग लेने वाले को द्यौका कहा जाता है। ये चार खाम है–चमियाल, गढ़वाल, लमकणिया, वालिकाया वोल्किया खाम।[8] चारों खाम के द्यौका रिंगाल की खपच्चियों से बनी छतरी और एक डंडा लेकर तथा सिर पर मोटे कपडें की पगड़ी लपेट कर अपने निशान, वाद्य यंत्रों नगाढ़े तुरही, ढोल, नाद, भकौरा आदि के साथ मेला स्थल पर एकत्र होते है। देवी को सात बकरो और भैंसे की बलि दी जाती है। देवी पूजन के बाद पुजारी बग्वाल की घोषणा

THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

करता है और अपने निर्धारित दिशा से चारों खाम के द्यौके पत्थरों को दूसरे दल पर फेंकना प्रारम्भ करते हैं। पुजारी ही शंखनाद करके बग्वाल समाप्त करने की घोषणा भी करता है।

बग्वाल मेले कुमाऊँ क्षेत्र में अनेक स्थानों पर भिन्न भिन्न तिथियों पर लगते हैं। चम्पावत के बाईस और वैराठ के दस स्थानों में बग्वाल मेले का आयोजन किया जाता था। 'दस दसें विस बग्वाल, काली कुमूँ फुलि भग्याल' रानीखेत में फल्दाकोट के सिलंगी गांव में, चम्पावत में विसुं पट्टी में, गुमदेश पट्टी में चमलदेव गांव में, अल्मोड़ा में बग्वाली पोखर आदि स्थानों पर बग्वाल मेले लगते है।[9]

स्याल्दे विखाँती मेला:– सामन्ती संघर्ष के प्रतीक के रूप में दूसरा मेला द्वाराहाट का स्याल्दे बिखौती मेला है।

स्याल्दे बिखाँती शीतला देवी तथा विपुवत संक्रान्ति का अपभ्रंश है। पुरातत्ववेत्ता ताराचन्द्र त्रिपाठी के अनुसार यह कत्यूर शासक शालिवाहन से सम्बन्धित है। इस एतिहासिक मेले को प्राचीन काल से ही विजयोत्सव की भांति मनाया जाता है। मेला चैत्र मास की अन्तिम तिथि को विभान्डेश्वर मंदिर से प्रारत्भ होता है, यहाँ स्नान एवं पूजा करके ग्रामवासी वैशाख माह के प्रथम दिन द्वाराहाट के स्याल्दे पोखार के समीप स्याल्दे मेले के लिये एकत्र होते हैं। स्याल्दे विखाँती के दिन प्रत्येक धड़ा अपनी अपनी रस्में पूरी करता है तथा ओड़ा भेंटता है।[10]

प्रारम्भ में एक सम्मिलित धड था, जिनका नेतृत्व चौधरी करता था। इस सम्मिलित धड़े का बिनता के कैड़ा लोगों से विवाद हो गया था। इस विवाद में कैड़ा सरदार मारा गया तथा उसका सिर काटकर स्याल्दे पोखार के समीप गाढ़ दिया गया। द्वाराहाट के स्याल्दे पोखर के समीप गड़े पत्थर जिसे ओड़ा कहते हैं को विरोधी दल के सरदार का सिर माना जाता है। बाद में धड़ा टूट गया और "गरख" तथा आल में बंट गया। उनकी सीमा निर्धारित की गयी। खिरगंगा (खिरोनाला) से पूर्व की ओर के गाँव आल में तथा पश्चिम के गाँव गरखा में माने गये। मतभेदों के कारण गरखा भी नौज्यूला धड़े में बंट गया। अब तीन धडों में बंटा है। कैड़ा लोग वैशाखी के दिन अपने पूर्वज की हत्या होने के कारण इस मेले में नहीं आते हैं।

धड़ों में विभक्त होने के पश्चात प्रत्येक धड़ा पहले ओड़ा भेटने का दावा करता था। इस कारण प्रत्येक वर्ष मेले के अवसर पर लड़ाई हो जाती थी। फलतः पंचायत या अदालत द्वारा निश्चित किया गया कि प्रत्येक धड़ा तीन तीन वर्ष पश्चात पहले ओड़ा भेंटेगा। नौज्यूला धड़े वालों

ने फिर भी पहले ओड़ा भेंटने की जिद की। मेले के प्रथम दिन बाट पुजे (मार्ग की पूजा (या नान स्याल्दे) छोटा स्याल्दे) का काम प्रति वर्ष नौज्यूला धड़े वाले करते हैं और देवी की अर्चना करते हैं।[11]

ओड़ा भेंटने का कार्य प्रातः काल से ही आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक धड़ा अपने ढ़ोल–नगाड़े, हुड़का तथा निशान (पताका) लेकर छोलिया नृत्य करते हुए आते हैं और शत्रु को ललकारते हुए तलवारों से विजय चिन्ह ओड़े में प्रहार करते हैं। तत्पश्चात शीतला देवी मन्दिर में जाकर पूजन कार्य किया जाता है। इस सम्पूर्ण कार्य प्रणाली के समाप्त होने के पश्चात तीनों धड़े भिन्न भिन्न स्थानों पर अपना डेरा डालकर नृत्य आदि करते हैं। सांयकाल तक धड़े वापस लौट जाते हैं और स्याल्दे–बिखौंती का मेला समाप्त हो जाता है।

पाली पछाऊँ के सर्वाधिक प्रसिद्ध मेले में से है। कुमाऊँ के लोकगीतों में भी इस मेले का विशेष उल्लेख मिलता है। राज्य सरकार द्वारा इसे अभी हाल में ही राज्य मेला घोषित किया गया है।

"ओभिना, कसि के जॉनू द्वारिहाटा,

हिट वे साली, हिट वे साली द्वारिहाटा,

स्याल्दे कौतिक लाग्यो द्वारिहाटा।"

महत्व–

सामाजिक – पुराने समय में जब सडके नहीं थीं व पहाड़ों में यात्राएं दुष्कर थी, तब मेले अपने सगे संबधियों से मेल मिलाप का एक महत्वपूर्ण साधन थे। इन कौथिकों का वर्ष भर अधीरता से इंतजार किया जाता था।

राजनैतिक महत्व–मध्यकाल में सैनिकों के पराक्रम और युद्धकला के प्रदर्शन के दुष्टि से इन मेंलों का अतयन्त महत्व था। बगवाल जेसे मेलों में सामन्तों के गुटों में संघर्ष अपने वर्चस्व को सिद्ध करने तथा राजा को प्रभावित करने के लिए किए जाते थे।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान स्थानीय नेताओं द्वारा मेलों में जनसमूह को जागृत करने और अपने विचारों का प्रसार प्रचार करने के लिए किया गया। बागेश्वर का उत्तरायणी के मेला कुली बेगार आन्दोलन के लिए प्रसिद्ध है।[12]

सांस्कृतिक महत्व–मेलों के माध्यम से स्थानीयलोक संस्कृति का प्रसार होता था। विशेषरूप सेमेलों में ग्रामवासी लोक गीत एवं लोक नृत्य–झोड़ा, छपेली, छोलिया, चांचरी, बैर, भगनौल आदि का प्रदर्शन करते हैं। साथ ही विभिन्न पारम्परिक वाद्य यंत्रों हुड़का, तुरही, मशकबीन, ढोल, नगाड़े आदि को लेकर पारम्परिक वेशभूषा में जाते थे। आधुनिक युग में भी मेलों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है और लोक संगीत और नृत्य के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

आर्थिक महत्व–पर्वतीय व्यापार की दृष्टि से मेलों का विशेष महत्व है। सुदूर के हस्तशिल्प, मसाले, ऊन आदि का क्रय विक्रय होता है। उत्तरायणी के मेले में तिब्बत, नेपाल के व्यापारी आते थे।

–तिब्बती व्यापारी ऊनी सामान, जानवरों की खालें, नमक आदि, नेपाल से शिलाजीत, कस्तूरी आदि, बागेश्वर के बर्तन, दानपुर की चटाइयां, भोटिया जोहार से गलीचे, दन, थूल्मा, कम्बल, जड़ी बूटियां, मसाले आदि का बाजार इन मेलों में लगाते थे। यहां के निवासी इन मेलों में जाकर खेती के औजार और बर्तन आदि भी क्रय करते थे।

पर्यटन का विकास–यह मेले पर्यटकों को भी आकर्षित करते हैं। आधुनिक युग में कुमाऊँ की संस्कृति के प्रसार प्रचार हेतु इन मेलों का विशेष महत्व है।

eISSN 2581-8996

[Date]

THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)

A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL

Vol. 3, Issue 02, July 2020

सन्दर्भ–

1. चातक, गोविन्द–भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ, आर.के. बुक, 2014

2. हरारी,युवाल नोआ– सेपियन्स–मानव जाति का संक्षिप्त इतिहास–मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल,2020

3. पंत , धर्मेन्द्र– प्रकृति को समर्पित –उत्तराखण्ड के पर्व– पुस्तक संस्कृति,राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,नई दिल्ली

4.पन्त, एस.डी.–भारत–नेपाल व्यापार, पहाड़–16–17, 2008 एवं शक्ति समाचार पत्र–जौलजीवी मेला, 30 नवम्बर,1946

5. चौहान, चंद्र सिंह– कुमाऊँ में कोट एवं सैन्य संगठन–उत्तराखण्ड का इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्वः नई खोजें

और सर्वेक्षण, उ0 इ0 सं0 परिषद प्रोसिडिंग्स, 2007, पृष्ठ–70

6.चौहान, चंद्र सिंह– पूर्वोक्त, पृष्ठ–70

7.सिंह, राम –राग भाग–काली कुमाऊँ, प्रकाशक–पहाड़ पोथी, 2002, पृष्ठ–186

8.सिंह, राम –राग भाग–काली कुमाऊँ, प्रकाशक–पहाड़ पोथी, 2002, पृष्ठ–181

9.चौहान, चंद्र सिंह–पूर्वोक्त, पृष्ठ–70

10.सिंह, राम– स्याल्दे बिखौती, द्वाराहाट– लेख–रानीखेत स्मारिका, 1987

11.साह,उमेश चन्द्र– कुमाऊँ का जिन्दा मेला स्याल्दे बिखौती, लेख, शक्ति–9 अप्रैल, 1976

12.पाठक शेखर– उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, पृष्ठ–168